# प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में मानवीय मूल्य

**डा. संजय कुमार,**

**सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,**

**रामलाल आनन्द महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।**

मानव जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। बिना शिक्षा के मानव पशु के सदृश है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भौतिकता का विकास एवं उन्नति अपने चरमोत्कर्ष पर है। वैज्ञानिकता के इस युग में सामाजिक दृष्टिकोण से यह अनिवार्य भी है किंतु साथ ही शिक्षा का सोद्देश्य होना आवश्यक है, क्योंकि अभी वर्तमान शिक्षा प्रणाली से मानव का कल्याण संभव हो पाता तो समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अशांति, चोरी-डकैती, हिंसा, आतंक आदि विकृत संस्कृति का प्रचार-प्रसार न हो रहा होता और नहीं मानव पीड़ित होता। आज आवश्यकता है वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्राचीन भारतीय शिक्षा के समावेश की, क्योंकि संपत्ति शिक्षा में हम जिन शैक्षिक मूल्यों का अभाव पाते हैं प्राचीन भारतीय शिक्षा में प्राप्त होते हैं। शिक्षा के संबंध में महात्मा गांधी कहते हैं - **शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जो बालक एवं मनुष्य के शरीर आत्मा एवं मन का सर्वोत्कृष्ट विकास कर सके।** आज आवश्यकता है वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्राचीन भारतीय मूल्य आधारित शिक्षा के समावेश की क्योंकि वेद को हम विश्वबंधुत्व, विश्व शांति, समष्टि-भावना, भद्रभावना, आशावाद, निर्भयता, सामंजस्य के महान आदर्शों और उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत पाते हैं। वेदों में शिक्षा शब्द का प्रयोग विद्या, ज्ञान, बोध एवं विनय आदि अर्थों में दृष्टिगोचर होता है। सायण ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में लिखा है '**स्वरवर्णाद्युच्चारण प्रकारो यत्र शिक्ष्यते, उपदिश्यते सा शिक्षा'।**[1]

वैदिक शिक्षा का उद्देश्य मानव की अंतःशक्तियों को समुचित रुप से जागृत करना था किंतु वर्तमान में शिक्षा का सम्बंध केवल जीविका की समस्या का समाधान माना जाता है। वेद समस्त विद्याओं का मूल है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, संगीत आदि सब शास्त्रों का उद्गम वेद से माना जाता है। क्योंकि वेद का प्रत्येक वाक्य सर्वज्ञ ईश्वर का वचन है तथा बुद्धिपूर्वक उक्त है। वैदिक आदर्श में शिक्षा शब्द वेदांग वाचक तो है ही विद्या या ज्ञान की प्राप्ति का साधन भी है। वेद के अनुसार विद्या से मनुष्य अमृत पद को प्राप्त करता है।[2] वैदिक शिक्षा केवल भौतिक उपलब्धियों उपलब्धियों तक ही सीमित न रहकर आत्म चिंतन का ध्येय निर्धारित करती है। अतः शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा मानव व्यक्तित्व के चारों पक्षों का समग्र विकास वैदिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य रहा है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षा अखंड-सत्य का बोध कराने वाली तथा आध्यात्मिक होनी चाहिए वस्तुपरक नहीं।

## नैतिक मूल्य:

वेद भारतीय संस्कृति की शाश्वत निधि है और मानव जाति के लिए सार्वभौम व सार्वकालिक संदेशों के वाहक हैं। वैदिक शिक्षा प्रणाली मानवीय भावनाओं और महान नैतिक मूल्यों पर आधारित । अतः ऋत और सत्य, श्रद्धा, आशा, उत्साह, वीरता, पवित्रता, ब्रह्मचर्य एवं व्रत की महिमा से ओतप्रोत वैदिक संस्कृति तथा

[1] सायण ऋग्वेदभाष्य भूमिका वृ-49

[2] विद्यया अमृतम् अश्नुते, ईशोपनिषद 14

उससे अनुप्राणित वैदिक शिक्षा पद्धति में मानवीय और नैतिक मूल्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक आदर्श के अनुसार शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान अर्जन का माध्यम नहीं अपितु व्यक्तित्त्व निर्माण एवं आत्मसाधना का अनुशासन था अतः प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत निम्न बिंदुओं पर विचार किया जायेगा -

## 1. ब्रह्मचर्य:

वेद के कथनानुसार देवो ने ब्रह्मचर्य तथा तपस्या के बल पर मृत्यु को परास्त किया और अमर हो गए। वस्तुतः प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में सच्चरित्र और सुसंस्कृत शिक्षार्थी ब्रह्मचारी के रुप में गुरुकुल में प्रविष्ट होते थे। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के मूल में सबसे महत्त्वपूर्ण 'नैतिक मूल्य' था। ब्रह्मचारी का अभ्यास जो प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अपरिहार्य था। आश्रम व्यवस्था पर आधारित वैदिक संस्कृति में विद्या अध्ययन काल ब्रह्मचर्य आश्रम ही कहलाता था। इसलिए अरण में रहने को भी ब्रह्मचर्य कहा गया है। तथा 'ब्रह्मा' के स्वरुप में विचरण करना अर्थात ब्रह्मा का मनन करना भी ब्रह्मचर्य का अर्थ है। वैदिक ऋषियों के अनुसार जीवन और प्राण का मूल स्रोत भौतिक नहीं आध्यात्मिक है और भौतिक तत्त्व का आध्यात्मिक सत्ता में आकर्षण ही ब्रह्मचर्य है। पूर्ण ब्रह्मचर्य से प्रबल बौद्धिक शक्ति और आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न होती है। वासनाओं को वश में कर लेने से उत्कृष्ट फल प्राप्त होते हैं इसीलिए ब्रह्मचारी के मस्तिष्क में प्रबल कार्य शक्ति और संकल्प शक्ति रहती है। ब्रह्मचर्य कोई प्राचीन रूढि नहीं है, यह तो संयम और साधना का सनातन मंत्र है। अतः इसमें मन का नियंत्रण बड़ा आवश्यक है। इससे जीवन में अदम्य उत्साह, शारीरिक बल और शक्ति उत्पन्न होती है जो ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक है। वस्तुतः शिक्षा या ज्ञान एक बौद्धिक प्रक्रिया है। ज्ञान प्राप्ति की सफलता हेतु मन को शुद्ध, निर्विकार रखना रखना अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य वेद की शिक्षा का प्रारंभ बिंदु था। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी को पूर्ण मानव, योग्य गृहस्थी और आदर्श नागरिक बनाना प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का ध्येय था। ब्रह्म शब्द के अनेक अर्थ हैं ज्ञान, वेद, ईश्वर, वीर्यरक्षा, संयम, नियम इत्यादि इन की प्राप्ति और आचरण ही ब्रह्मचर्य है। केवल कुशल, होनहार, कर्मठ, सच्चरित्र वाला छात्र की वहां प्रवेश पा सकता था। यद्यपि वैदिक शिक्षा प्रणाली सभी मानवों को समान रुप से शिक्षा का अधिकार देती है। किंतु साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि शुचि, अप्रमत्त, मेधावी और ब्रह्मचर्य से संपन्न विद्यार्थी को दी गई विद्या ही सफल होती है। विद्यार्थी गुरु के आश्रम में आता था तब सबसे पहले उसका उपनयन संस्कार करके उसे ब्रह्मचर्य व्रत और गायत्री मंत्र का उपदेश दिया जाता था तब उसे शिक्षा के योग्य बनाने के लिए गुरु उसे तीन रात तक अपने उदर या गर्भ में रखता था अर्थात अपने संपर्क से उसके त्रिविध अज्ञान (जन्म, परिवार और परिवेश) रूप दोषों को दूर कर उसे गुरुकुल में लेता था। इसके लिए वेद का यह भी आदेश है कि गुरु अपने 'आचार' से विद्यार्थी को शिक्षित करें तभी वह आचार्य कहलाएगा।

वैदिक शिक्षण पद्धति में 'अध्ययन' का स्थान तो सर्वथा नगण्य था। श्रवण, मनन और निदिध्यासन - ये तीन शिक्षा के सोपान माने गए थे। ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहकर प्रतिफल गुरु के जीवन से साक्षात जीवन कला की शिक्षा लेता था। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली मौखिक परंपरा पर आधारित थी। इसीलिए वेद को 'श्रुति' कहा जाता है क्योंकि ज्ञान पुस्तकों या पांडुलिपियों में निहित नहीं होता था जिसे पुस्तकालय में संचित किया जा सके अपितु मस्तिष्क में ही निहित होता था और स्वयं आचार्य ही उस समय के जीवित और सचल पुस्तकालय होते थे। अतः गुरु की सेवा से ही विद्या पाई जा सकती थी। इसीलिए ब्रह्मचारी गुरुकुल के लिए प्रतिदिन भिक्षाटन भी करता था। विद्यार्थी में मानवीता एवं त्याग की भावना जगाने के साथ-साथ भिक्षाटन

अहंभाव को विगलित करने एवं अनियमित कामनाओं को नियंत्रण करके नैतिक अनुशासन सिखाने में सहायक होता था। इस माध्यम से प्रतिदिन ब्रह्मचारी का गृहस्थों से संपर्क आश्रम एवं समाज, वैराग्य एवं रागपूर्ण संबंधों के बीच एक समन्वयन भी स्थापित करता था। वेद में ब्रह्मचारी के लिए 'व्रतधारी' यह विशेषण भी मिलता है जिससे यही संकेत होता है कि वैदिक शिक्षा में शिक्षार्थी को कुछ व्रतों या नियमों का पालन अनिवार्य था।

## 2. तप:

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्य के साथ-साथ को भी बड़ा महत्त्व दिया गया है। अपने आप को जो धर्म और राष्ट्र के लिए देता है, उसको निश्चय ही तप कहते हैं। वैदिक मानव केवल प्रार्थना द्वारा हाथ पर हाथ रख कर सब कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखता था। वह अपने पुरुषार्थ में विश्वास रखता था और स्वयं अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयत्न करता था। उसके मन में यह दृढ़ विश्वास था कि संसार को यदि ऋत चलाता है तो मानव जीवन को सत्य चलाता है। ऋत ही मानव जीवन में सत्य कहलाता है, कष्ट सहकर भी मनुष्य को सत्य के मार्ग पर रहना चाहिए क्योंकि ऋत और सत्य तप से ही उत्पन्न होते थे। वस्तुतः शिक्षा ज्ञान प्राप्ति की साधना है और ज्ञान प्राप्ति के लिए एक ही मार्ग है – एकाग्रता। इंद्रियों तथा चित्त की एकाग्रता का नाम ही परम तप है। इसलिए वैदिक ऋषियों ने चित्तवृत्ति निरोध या तप को ही शिक्षा का लक्ष्य माना है, यही योग है और योग-साधना ही वैदिक शिक्षा प्रणाली है क्योंकि वैदिक संस्कृति यज्ञ और योग की संस्कृति है। अतः योग आधारित प्राचीन भारतीय शिक्षा में तप का प्रमुख स्थान रहा है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में तप श्रम का पर्याय है और गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचारी को तप या श्रम का ही अभ्यास करना होता था। नैतिक मूल्य आधारित शिक्षा वैदिक शिक्षा प्रणाली में तपस्या या श्रम का महत्व सुव्यक्त है। वेद की तो स्पष्ट घोषणा है कि देवगण उसी की सहायता करते हैं जो परिश्रम करते करते थक गया है, अतः तप द्वारा निश्चय ही लोक में विजय पाते हैं।

## 3. सर्वजनकल्याण की भावना:

वैदिक शिक्षा प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता मानवीय भावना रही है। वेद में व्यक्ति को समाज के योग्य बनाना ही शिक्षा का केंद्र माना गया। अतः 'सर्वत्र कृण्वन्तो विश्वमार्यम" जैसे आदर्श सामने रखे गए। इनसे अधिक सार्वभौमिक, सार्वकालिक और मानवतावादी शिक्षाप्रद संदेश अन्यत्र मिलने दुर्लभ हैं। मनुष्य मात्र के प्रति सौहार्द व सद्भाव सिखाना वैदिक शिक्षा प्रणाली का प्रधान लक्ष्य रहा है। इसीलिए समस्त विश्व के सभी प्राणियों के प्रति मित्र दृष्टि का विस्तार और ब्रह्मांड के सभी लोगों में शांति की प्रार्थना वैदिक ऋषियों की मूल कामना थी। वेद के साम्मनस्य सूक्तों में व्यक्त सामाजिक सहयोग की भावना विश्व साहित्य में अद्वितीय ही है और यही समष्ठी भावना प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का आधार भी रही है। गुरु-शिष्य एक साथ आश्रम में रहकर श्रद्धा, सहिष्णुता, तप तितिक्षा और त्याग के अतिरिक्त मानवीयता का भी अभ्यास करते थे। समाज के सभी वर्गों के विद्यार्थी एक साथ रहते तथा पढ़ते थे अतः सामाजिक वैषम्य व भेदभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। आचार्य के साथ बैठकर जब राजा और निर्धन सभी के बालक 'सह नाववतु' और 'सह नौ भुनक्तु' की प्रार्थना करते थे तो उनमें विद्वेष और विघटन के भाव स्वतः ही विगलित हो जाते थे तथा वह शिक्षा केवल ज्ञानसंग्रह नहीं अपितु विश्व-मानवतावादी क्रियावती फलवती शिक्षा होती थी। एक

समान खानपान, एक समान रहन सहन और एक सी शिक्षा ही उसे उस सच्चे समाजवाद को मूर्त्त करने में सहायक होते थे जिकी परिकल्पना वैदिक ऋषियों ने की थी।

इस प्रकार उक्त संकेतों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली केवल सैद्धांतिक नहीं अपितु व्यावहारिक भी थी। उसका उद्देश्य मात्र अर्थोपार्जन सिखाना नहीं अपितु धर्म, अर्थ, काम और तीनों का समन्वित सेवन सिखाना था जिससे मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बन सके और अपने पुरुषार्थ की सिद्धि कर सके। आधुनिक शिक्षा पद्धति केवल मनुष्य का मानसिक व बौद्धिक विकास करने पर ही बल देती है किंतु उससे मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता यही कारण है कि आज शिक्षक जनों के एवं शिक्षा के आंकड़े बढ़ने पर भी हमारा नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास सर्वथा अवरुद्ध सा होता जा रहा है। द्रुत औद्योगिकरण एवं भावी समाज के प्रति उदासीनता की भावना ने विश्व में प्राकृतिक संपदा का क्षय एवं पर्यावरण प्रदूषण बढ़ाने में बहुत सहायता की है। सापेक्ष रूप से सत्य होने पर भी आधुनिक विकास और वर्तमान शिक्षा के प्रसार ने सभ्यता का विनाश ही किया है। एक निश्चित सीमा तक भौतिक उन्नति जीवन को आगे बढ़ाती है किंतु उससे मानवीयता के उत्कर्ष की सम्भावना सुनिश्चित नहीं हो सकती। यही कारण है कि आज का मनुष्य खंड खंड होता जा रहा है, उसके समक्ष अखंड का सत्य का बोध कराने वाला या अखंड व्यक्तित्त्व निर्माण करने वाला कोई आदर्श नहीं है। सच्ची शिक्षा का तात्पर्य है 'मनुष्य में अंतर्निहित पूर्णता का प्रकाशन'। अतः शिक्षा के द्वारा मानव के अन्दर छिपी हुई दानवीय प्रवृत्तियों को नष्ट कर उसे मानवीय आदर्शों के प्रति सजग बनाया जाता है जिससे कि वह दिव्यता की ओर उन्मुख हो। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति एक निश्चित लाक्षात्मिक शाश्वत पद्धति थी और उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह मनुष्य को इस दिव्य व्यक्तित्त्व निर्माण की साधना सिखाती है और मनुष्य को मनुष्यत्त्व की शिक्षा देती है। इसीलिए उसमें शरीर, मन या बुद्धि का विकास करने पर नहीं अपितु समग्र संतुलन पर बल दिया गया है और 'आत्मविद्या' यानि अपने अन्तस् की पहचान कराने के लिए सत्य, धर्म, व्यवहार-शुद्धि, मानवीय मूल्य और नैतिकता प्राकृतिक चेतना एवं परिवेश के प्रति संवेदना आदि उदात्त तत्त्वों को भी समाविष्ट किया गया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज की उपयोगितावादी शिक्षा को जीवन के समग्र विकास की दृष्टि से रचनात्मक मोड देने के लिए आवश्यक है कि उसमें जीवन मूल्यों की शिक्षा, मानवीय संबंधों की शिक्षा, परिवेश परिपोषण की शिक्षा, भावनात्मक संतुलन की शिक्षा तथा सर्वोपरि सिद्धांत और व्यवहार के समन्वयन की शिक्षा भी समाविष्ट की जाए। शिक्षा में परिवेश और नैतिक मूल्यों के प्रति जागृति का समावेश होने से अंतःप्रकृति और बाह्यप्रकृति के संतुलन में सहायता मिलेगी तथा समाज में सच्चे, सर्वांगीण रूप से विकसित, आध्यात्मिक आदर्शों से अनुप्राणित मनुष्यों के निर्माण की प्रक्रिया पुनः आरंभ हो सकेगी जो प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का केंद्र बिंदु है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची:**


1. ईशादि नौ उपनिषद् (शांकरभाष्यार्थ), गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2066
2. वैशेषिकसूत्रोपस्कार, नारायण मिश्र, वाराणसी, चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, 2002
3. मनुस्मृति, व्या. श्रीकृष्ण ओझा, जयपुर, राजप्रकाशन मंदिर,2005
4. वैदिक अनुशीलन, शशिप्रभा कुमार, दिल्ली, विद्यानिधि प्रकाशन,1998
5. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, आचार्य शंकराचार्य कृत, व्या. स्वामी हनुमानदास जी षटशास्त्री, वाराणसी चौखंबा विद्याभवन,2010
6. वैदिक विमर्श, शशिप्रभा कुमार, दिल्ली विद्यानिधि प्रकाशन, 1998